इकाई 1

अतीत में शिल्प – एक अवलोकन

1 अतीत में शिल्प

सबसे पहले हम इस बात को समझते हैं कि शिल्पकार शिल्पवस्तुओं के निर्माता और विक्रेता के अतिरिक्त समाज में डिज़ाइनर, सर्जक, अन्वेषक और समस्याएँ हल करने वाले रूप में भी कई भूमिकाएँ निभाता है। अत: शिल्पकार केवल एक वस्तु का निर्माता ही नहीं होता और शिल्पवस्तु केवल एक सुंदर वस्तु ही नहीं होती – इसका सृजन एक विशेष कार्य के लिए, ग्राहक की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए किया जाता है।

उदाहरण के लिए, ग्राहक या उपभोक्ता शिल्पकार से कह सकते हैं कि वह एक ऐसा प्याला बनाए, जिसे वे आसानी से पकड़ सकें और उससे गर्म पेय पी सकें। इस संबंध में शिल्पकार कुम्हार कप के हैंडल को इस तरह से डिज़ाइन करेगा कि उसे आसानी से पकड़ा जा सके और कप को इस प्रकार का आकार देगा कि न तो वह बहुत भारी हो और न ही बहुत बड़ा।

इस उदाहरण में आप देख सकते हैं कि ग्राहक शिल्पकार को एक समस्या हल करने के लिए देता है – वह गर्म पेय के लिए कप बनाए। शिल्पकार ने कप को हैंडल के साथ डिज़ाइन करके समस्या का बहुत अच्छा हल ढूँढ़ निकाला। इस मामले में डिज़ाइन तत्व में कप का हैंडल, आकार, उसका भार और उपयुक्त आकार हैं, जिससे उसका प्रयोग आसानी से किया जा सके। यदि कप दिखने में सुंदर है, तो यह अतिरिक्त लाभ होगा और हम कह सकते हैं कि शिल्पकार द्वारा डिज़ाइन किया गया कप सौंदर्ययुक्त है। लेकिन महत्त्वपूर्ण तथ्य कप की कलाकारी और सजावट नहीं, बल्कि ग्राहक की समस्याओं हेतु उपयुक्त एवं कल्पनाशील हल ढूँढ़ने में शिल्पकार का कौशल है।

ग्राहक, समाज और शिल्पकार के संबंध

इस संबंध में तीन प्रमुख तथ्यों पर विचार करना आवश्यक है – (1) ग्राहक और उसकी आवश्यकताएँ, (2) समाधान की जाने वाली समस्या एवं (3) कल्पनाशील एवं कुशल शिल्पकार, जो समस्या का हल ढूँढ़ सके। उत्पाद की उपयुक्तता हेतु ग्राहक और शिल्पकार, के मध्य विचार विमर्श बहुत ही आवश्यक है। ग्राहक को शिल्पकार को प्रोत्साहित करना चाहिए कि वह हर समय नयी और उत्साहजनक वस्तु का सृजन एवं उत्पादन करे। इसके बदले में शिल्पकार को ग्राहक की माँग को समझने की आवश्यकता है। यदि ग्राहक प्रत्येक वर्ष दिवाली पर सौ दीयों की माँग करता है, तो यह माँग नियमित और कुछ हद तक उबाऊ भी है। यदि ग्राहक सौ दीयोंवाले स्टैंड की माँग करता है, तो कुम्हार इस पर सोचेगा कि एक ऐसा स्टैंड कैसे बनाया जाए, जिसमें सौ दीये रखे जा सकें और जिसे आसानी से इधर-उधर ले जाया जा सके, जिसमें कि तेल भी आसानी से भरा जा सके इत्यादि। अतः ग्राहक और शिल्पकार के मध्य संबंध होना अत्यावश्यक है।

इसलिए शिल्पकार में कई महत्त्वपूर्ण कौशल होते हैं, जिनके द्वारा वह डिज़ाइन बना सकता है, खोज कर सकता है, समस्या का हल ढूँढ़ सकता है, सृजन कर सकता है और विक्रय कर सकता है। विश्व में प्रत्येक देश में ऐसे लोगों की आवश्यकता होती है, जो प्रतिदिन की समस्याओं का व्यावहारिक एवं प्रभावी हल ढूँढ़ने में दक्ष हों, ऐसे शिल्पकार, जो विभिन्न सामग्रियों से निर्माण करने में कुशल हों और ऐसे समुदाय, जो नए और पुराने समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप निरंतर सृजन एवं नए उत्पादों को डिज़ाइन कर सकें। उदाहरण के लिए, बड़ी मात्रा में पानी भरकर दूर-दूर तक ले जाने की रोज़मर्रा की समस्या का अद्वितीय हल कच्छ में मटके के रूप में खोजा गया। ये मटके एक-दूसरे के ऊपर रखे जा सकते हैं और इसे महिला के सिर पर संतुलित किया जा

सकता है। इससे उसके हाथ खाली रहते हैं। सामान्यत: आज हम ऐसे व्यक्ति की प्रतिभा को सराहते हैं, जो नए कंप्यूटर अनुप्रयोग को डिज़ाइन करता है अथवा प्रौद्योगिकी में नयी खोज करता है।

इस अध्याय में आप देखेंगे कि भारत के लिपिबद्ध इतिहास में आरंभिक युगों से ही हमेशा कल्पनाशील शिल्पकारों का बहुत बड़ा समुदाय रहा है। ये विभिन्न क्षेत्रों के शिल्प समुदाय ही थे, जिन्होंने अमीरों और गरीबों के लिए जलवायु के अनुसार घरों का निर्माण किया। वे समुदाय जिस भी भगवान की पूजा करते हैं, उनके लिए पूजा स्थलों का निर्माण किया, भोजन पकाने वाले पात्र बनाए, जिसमें आसानी से भोजन तैयार किया जा सके, घर के लिए वस्तुओं का निर्माण किया और लोगों के लिए विभिन्न अवसरों और भिन्न-भिन्न जलवायु हेतु कपड़ों और सभी प्रकार के गहनों इत्यादि को तैयार किया।

समस्या-निवारण हेतु शिल्प

जब भी आप शिल्पवस्तुओं को देखते हैं, तो यह समझने और जानने की कोशिश करें कि शिल्पकार ने किस समस्या का हल ढूँढ़ा है और ग्राहक ने उससे क्या करने को कहा होगा। आपको याद होगा कि पाठ्यपुस्तक *एक्सप्लोरिंग इंडियन क्राफ़्ट ट्रेडिशिन–फ़ील्ड स्टडी एंड एप्लीकेशन इन हेरीटेज क्राफ़्ट* के प्रथम अध्याय *क्राफ़्ट्स एट होम* में चार्ल्स ईम्स द्वारा बताए गए लोटे के डिज़ाइन की सविस्तार व्याख्या की गई है।

जीवंत पुल

मेघालय में किस तरह एक विलक्षण समस्या का समाधान ढूँढ़ा गया, जहाँ की जलवायु लगभग पूरे वर्ष गर्म एवं नम होती है, जहाँ एक समय चेरापूँजी दुनिया का सर्वाधिक आर्द्रतावाला स्थान माना जाता था! उन्हें हर समय छोटी-छोटी धाराओं एवं नदियों पर पुल की आवश्यकता होती थी, जिससे लोग अपने सामान एवं पशुओं के साथ उसे पार कर सकें। जैसा कि आप जानते हैं कि दुनिया भर में पुल लकड़ी, स्टील और कंक्रीट के बनाए जाते हैं, पर मेघालय में लकड़ी का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था क्योंकि वह सड़ जाती है और न ही धातु या कीलों का प्रयोग कर सकते थे क्योंकि उन्हें ज़ंग लग जाता है। समस्या यह थी कि एक तेज़ बहती नदी पर एक मज़बूत पुल बिना लकड़ी या धातु के किस प्रकार बनाया जाए।

उन्होंने जो हल निकाला वह सरल, उत्कृष्ट और अत्यधिक उपयोगी है। उन्होंने सीखा कि नदी पर जीवंत पुल बनाने के लिए फ़िकस एलास्टिका पेड़ की पृथ्वी के ऊपर की वायवीय जड़ों का प्रयोग कैसे किया जा सकता है, जो कि नमीवाले वर्षा के मौसम में भी न खराब होगा, न सड़ेगा। पर ऐसे पुलों को बाँधकर कई वर्षों तक उनकी देखभाल करनी पड़ी, क्योंकि ये नदी के आर-पार जुड़े थे। फिर उन्होंने इन झूले जैसे पुलों पर पत्थर की शिलाएँ रख दीं, ताकि समतल फुटपाथ का निर्माण हो सके। जड़ों का यह जीवंत पुल कई वर्षों तक चलता है और इसमें लकड़ी या धातु का प्रयोग भी नहीं होता।

जब हम कहते हैं कि भारतीय शिल्प की लंबी और प्राचीन परंपरा है, तो हमारा आशय है कि हमारे यहाँ हमेशा रचनात्मक और कल्पनाशील लोग हुए हैं, जिन्होंने समस्याओं के समाधान के बहुत ही रोचक तरीके खोजे।

भारत के शिल्प और शिल्पकार यहाँ की लोक एवं शास्त्रीय परंपरा का अभिन्न अंग हैं। यह ऐतिहासिक समांगीकरण कई हज़ार वर्षों से विद्यमान है। कृषि अर्थव्यवस्था में आम लोगों और शहरी लोगों, दोनों के लिए प्रतिदिन उपयोग के लिए हाथों से बनाई गई वस्तुएँ शिल्प की दृष्टि से भारत की सांस्कृतिक परंपरा को दर्शाती हैं। हालाँकि शिल्पकार लोगों को जाति प्रथा के ढाँचे में बाँटा गया, लेकिन उनके कौशल को सांस्कृतिक और धार्मिक आवश्यकताओं द्वारा प्रोत्साहित किया गया एवं स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय व्यापार द्वारा इसे गति प्रदान की गई।

–जया जेटली
विश्वकर्माज़ चिल्ड्रन

शिल्प का विशिष्टीकरण

जैसा कि विश्व के अधिकांश भागों में है, भारत में भी कारीगरों का विशेष समूह के रूप में तब उद्‌भव हुआ, जब लोगों ने एक स्थान पर निवास कर खेतीबाड़ी करना आरंभ किया। जहाँ इन समुदायों के अधिकतर लोगों ने स्वयं

को कृषि संबंधी विभिन्न कार्यकलापों में व्यस्त रखा, वहीं कुछ ने विभिन्न शिल्पों में विशेषज्ञता हासिल करना आरंभ कर दिया। कुछ लोग घास, बेंत या चिकनी मिट्टी से पात्र बनाते, ताकि कृषि उत्पादों को उनमें रखा जा सके, कुछ जूते-चप्पल बनाते और अन्य ने हँसुआ और हँसिया निर्मित करने हेतु लोहे का काम करने में विशेषज्ञता हासिल की व कुछ पशुओं और सूत से कपड़े बनाने में दक्ष हुए।

आज भी भारत में हस्तशिल्प आय का वैकल्पिक स्रोत है और कई समुदायों की अर्थव्यवस्था का आधार भी। ग्रामीण शिल्पकार अपनी उत्पादन सूची की योजना वर्ष के मौसमों और स्थानीय कृषि तिथि-पत्र (कैलेंडर) के अनुसार सरलता से बनाते हैं। जब कृषि कार्यकलाप कम हो तब इन महीनों में शिल्प संबंधी कार्य किए जा सकते हैं, जिससे परिवार को अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है। कई महिलाएँ अपना घर का काम समाप्त करने के पश्चात् खाली समय में शिल्प-कार्य करती हैं। हाल के कुछ वर्षों में एक बार फिर से बड़ी संख्या में लोग आय के एकमात्र स्रोत के रूप में अपने पारंपरिक शिल्प की ओर लौटे हैं, जबकि कुछ लोग हस्तशिल्प उत्पादों से आय में अतिरिक्त वृद्धि करते हैं। यह आर्थिक तथ्य समान शिल्प में विशेष रूप से उत्पादन की निरंतरता, गुणवत्ता और उसमें सुधार हेतु योगदान करता है अर्थात इसे बाज़ार के अनुकूल बनाता है।

सिंधु घाटी सभ्यता (3000-1500 ई.पू.) के समय तक विकसित शहरी संस्कृति का उद्भव हो चुका था, जो अफ़गानिस्तान से गुजरात तक फैली थी। यहाँ पर पुरातत्ववेत्ताओं को चिकनी मिट्टी से बनी मूर्तियाँ, मोहरें (सील), कम मूल्यवान पत्थरों से बने मनके, सूती वस्त्र और विभिन्न आकृतियों, आकारों और डिज़ाइनों के मिट्टी के पात्र मिले, जो एक परिष्कृत शिल्पकार संस्कृति की ओर संकेत करते हैं। शिल्प समुदाय ने घर से गंदा पानी बाहर ही निकालने के लिए चिकनी मिट्टी से पाइप बनाकर इसका हल ढूँढ़ा। गंदा पानी नालियों द्वारा शहर की गलियों के नीचे से शहर के बाहर निकाला गया। शहर में सभी को पानी की आपूर्ति करने के लिए प्रत्येक घर के आँगन में निर्माणकर्ता और मिस्त्रियों ने कुँए खोदे। पाँच हज़ार वर्ष पहले विशिष्ट शिल्प समुदायों ने सामाजिक आवश्यकताओं और अपेक्षाओं की पूर्ति का सरल और व्यावहारिक समाधान खोजा, जिससे कि लोगों के जीवन को सुधारा जा सका।

संगम साहित्य 100 ई.पू.-600 इसवी के मध्य लिखा गया, जिसमें सूती और रेशमी कपड़ों की बुनाई के बारे में हवाला दिया गया है। बुनकर समाज मान्यता प्राप्त और स्थापित वर्ग था और उनके लिए अलग गलियाँ थीं,
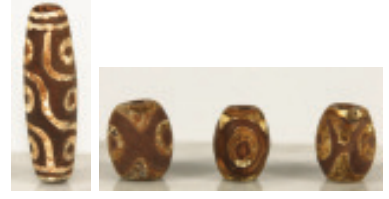
जिनके नाम 'कारूगर वीडी' और 'ऑरोवल वीडी' थे। चोल और विजयनगर साम्राज्यों (9वीं से 12वीं शताब्दी) दोनों में ही बुनकर मंदिर परिसर के आसपास रहते थे। वे लोग मूर्ति के वस्त्रों, परदों और पंडितों तथा स्थानीय लोगों के वस्त्रों के लिए कपड़ा बुनने के साथ-साथ समुद्रपारीय व्यापार हेतु भी कपड़ा बुनते थे।

वस्त्र निर्माण मुख्यत: तीन क्षेत्रों तक केंद्रित था – पश्चिम भारत, जहाँ गुजरात, सिंध और राजस्थान मुख्य थे; दक्षिण भारत, विशेषत: कोरोमंडल तट एवं पूर्वी भारत, जिसमें बंगाल, उड़ीसा और गंगा का मैदानी भाग शामिल हैं। इसमें प्रत्येक क्षेत्र विशेष कला और विशिष्ट कपड़ा उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। ये इस बात के प्रमाण हैं कि भारतीय इतिहास में भिन्न-भिन्न समय पर आर्थिक संगठन के भिन्न-भिन्न प्रकार और शिल्प उत्पादन की विधियों का अर्थव्यवस्था के बृहद तंत्र में एकीकरण हुआ है।

श्रेणी या व्यापार संस्थाएँ

रामायण और गुप्त काल के कई नाटकों एवं तमिल संगम साहित्य में व्यापार संस्थाओं या श्रेणियों के बारे में विस्तृत रूप से लिखा गया है। ये जौहरियों, बुनकरों, हाथी दाँत से बनी वस्तुओं की नक्काशी करने वालों एवं नमक बनाने वालों के व्यावसायिक निकाय थे, जो गुणवत्तापूर्ण उत्पादन को नियंत्रित करने, एक बेहतर वाणिज्य आचार संहिता निर्मित करने, उचित मज़दूरी और मूल्य निर्धारित करने के लिए एकजुट हुए। इन्होंने कई बार सहकारी निकाय के रूप में भी संचालन किया और शिल्पकारी के उच्च मानक स्थापित करके तथा प्रशिक्षुता संबंधी नियमों को लागू करके नए लोगों के प्रवेश को नियंत्रित किया।

प्रत्येक संस्था का अपना एक अध्यक्ष था, जिसे अन्यों द्वारा सहयोग दिया जाता था। इन कार्यकर्ताओं को बहुत ही सावधानी के साथ चुना जाता था। संस्था के सदस्यों को दुर्व्यवहार का दोषी पाए गए प्रमुख पर अभियोग चलाने और उसे दंड देने का अधिकार प्राप्त था।

श्रेणियाँ अनिवार्यत: किसी एक स्थान तक सीमित नहीं थीं और कालांतर में एक शहर से दूसरे शहर तक कार्यक्षेत्र फैला सकती थीं। कभी-कभी

कारीगरों और व्यापारियों की श्रेणियाँ एक संयुक्त संगठन के रूप में होती थीं, जिन्हें निगम कहा जाता था अथवा जो वाणिज्य और उद्योग संघ के समकक्ष था। कुछ निगमों में निर्यातकों का वर्ग भी सम्मिलित था, जो दूर के क्षेत्रों तक उस कस्बे की विशिष्ट वस्तु को पहुँचाते थे और जितने स्थानीय दाम पर उसे खरीदा होता था, उससे कई अधिक कीमत पर उसे बेचते थे। सभी प्रकार से श्रेणियाँ बेहतर और स्थिर संस्थाएँ थीं, जिनकी न केवल अपने सदस्यों के मध्य बल्कि समाज में भी नैतिक और सामाजिक प्रतिष्ठा थी। यह निष्कर्ष उनके लिपिबद्ध आलेखों (रिकॉर्ड) से सामने आया है, जो कि समग्र उत्तर और दक्षिण भारत के शिलालेखों में संरक्षित है।

पिछली पाँच सदियों से संस्थाओं की श्रेणियों में काफ़ी दबाव बढ़ गया है। सर जॉर्ज बर्डवुड ने 1880 में अवलोकन किया कि 'ब्रिटिश शासन के अंतर्गत... भारत में व्यापार श्रेणियों के प्राधिकारों में, उन हस्तशिल्पों की चिह्नित हानि तक छूट दी गई है, जिनकी उत्तमता आनुवंशिक प्रक्रियाओं और कौशल पर निर्भर करती है।'

भारत में आज भी शिल्पकार, संघों के बारे में कम जानते हैं। सरकार द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त इन सहकारी समितियों को कारीगर संघ के आधुनिक अवतार के रूप में देखा जा सकता है, लेकिन इनकी सफलता अभी तक बहुत सीमित है।

शिल्प उत्पादन के सामाजिक आयाम

उपनिवेशकाल तक भारत में शिल्प उत्पादन केवल तत्कालीन ग्रामीण बाज़ार के लिए था और शिल्पवस्तुएँ बहुत ही कम पूँजी के प्रयोग से छोटी इकाइयों में उत्पादित की जाती थीं। चूँकि अधिकांश मामलों में शिल्पकार के व्यापार का चयन जैविक परंपरा निर्धारित करती थी, इसलिए परिवार सहज ही एक इकाई के रूप में कार्य करता था और परिवार का मुखिया ही विशेषज्ञ शिल्पी होता था, जो परिवार के अन्य सदस्यों को आवश्यक प्रशिक्षण भी देता था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र (तीसरी शताब्दी ई.पू.) में दो प्रकार के कारीगरों के मध्य भेद बताया गया है – पहले, वे विशेषज्ञ शिल्पकार, जो मज़दूरी पर कार्य करने वाले कई कारीगरों को रोज़गार देते थे, और दूसरे, वे कारीगर जो स्वयं की पूँजी से अपनी कार्यशालाओं में कार्य करते थे। कारीगरों को पारिश्रमिक या तो सामग्री के रूप में या नकद दिया जाता था। फिर भी

उन क्षेत्रों में, जहाँ रुपए का प्रयोग नहीं किया जाता था, सेवा संबंध और वस्तुओं का आदान-प्रदान ही चलता था। संभवत: यजमानी प्रणाली इन्हीं सेवा संबंधों का परिणाम है।

यजमानी प्रणाली

भारत के कई भागों में शिल्प क्षेत्र में लेन-देन यजमानी प्रणाली से होते थे। यजमानी प्रणाली शिल्प उत्पादन करने वाली जातियों और बृहद ग्रामीण समुदाय के मध्य सेवाओं और वस्तुओं की आपूर्ति हेतु पारस्परिक लेन-देन की व्यवस्था थी। जाति-प्रथा के कारण उच्च जाति के लोग कुछ व्यवसाय नहीं कर सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि संरक्षक या यजमान ग्रामीण/शहरी अर्थव्यवस्था हेतु अनिवार्य वस्तुएँ एवं सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए पुरजन (कृषक, शिल्पकार, नाई, धोबी, मोची, जमादार इत्यादि) पर निर्भर हो गए थे। इसके लिए एक निश्चित आय, वस्तु के रूप में देना तय था। यह किराया रहित भूमि, आवासीय स्थल, ऋण सुविधाएँ, भोजन या

गोबर भी हो सकता था। चूँकि अधिकतर उच्च जाति के लोगों के पास अपनी भूमि होती थी, इसलिए यजमानी प्रणाली में उन्हें मज़दूरों की पर्याप्त आपूर्ति रहती थी। आज भी इस प्रणाली का देश के कुछ भागों पर प्रभाव है, यद्यपि उपनिवेशवाद, प्रतियोगिता, बेहतरीन संचार सुविधाओं एवं संशोधित नागरिक कानूनों ने इन्हें अपने-अपने तरीके से बदल दिया है।

उत्तर भारत में सल्तनत और मुगल साम्राज्यों में राज्य द्वारा कारखाने चलाए जाते थे। उस समय के कई अन्य भारतीय शासकों ने भी इसका पालन किया।

मुगल साम्राज्य का धीरे-धीरे पतन होने का अर्थ था शॉल निर्माण, पत्थर पर नक्काशी, आभूषण, मीनाकारी, ऐश्वर्यपूर्ण वस्त्रों, लघु चित्रकारी जैसे विशिष्ट शिल्पों के संरक्षण का ह्रास होना। राजसी ग्राहकों की खोज में शिल्पकार मुगल दरबार से दूर राजस्थान के राज्यों (विशेषकर जयपुर, उदयपुर और जोधपुर), दक्कन एवं बंगाल की ओर रोज़गार ढूँढ़ने के लिए चले गए। लेकिन उपनिवेशवाद के आरंभ के साथ इसमें कुछ बदलाव तो होना ही था।

मुगलों ने भारत में आने पर देखा कि भारतीय देशज कला चीन, ईरान, मध्य एशिया की कला के समान ही कलात्मक हैं। चूँकि भारत आनेवाले विदेशी शिल्पकारों की संख्या कम थी, इसलिए वे अधिकतर स्थानीय लोगों के कौशल पर निर्भर करते थे। उनके कार्य के उत्पाद न विदेशी प्रकारों की नकल भर थे और न ही केवल भारतीय आदर्शों के अनरूप मात्र उस क्रम में बनाए गए थे। भारतीय तत्त्व मुगल कला में काफ़ी मज़बूती से उभरकर आया और अकबर तो विशेष रूप से कला के संरक्षक थे। *आइने अकबरी* से हमें ज्ञात होता है कि अकबर ने संपूर्ण भारत के कुशल शिल्पकारों को बुलाया। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से सभी के कार्यों का निरीक्षण करके उनमें से सबसे उत्कृष्ट को अधिलाभांश (बोनस) देकर या वेतन बढ़ाकर सम्मानित किया। राजपरिवारों को भेंट देने हेतु विशेष प्रकार के कवच, सोने चढ़े और सजे हुए हथियार, राजकीय प्रतीक और बड़ी संख्या में बुने हुए व कढ़ाई किए गए वस्त्र बनाने का आदेश दिया। कश्मीर के शॉलों को नया जीवन मिला और राजस्थान और दिल्ली के दस्तकारों ने बहुत ही बेहतरीन दरबारी ज़ेवरात बनाए।

कुलीन मुगल समाज में बेहतरीन हस्तशिल्प की बहुत अधिक माँग थी। इसके प्रमुख संरक्षक उसके शासक, राज परिवार और उसके दरबारी थे। मुगल कार्यशाला में कार्य करने वाले स्वदेशी दस्तकारों ने डिज़ाइन के सौंदर्य तत्व में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया और अपनी कला में विचारों एवं अभिवृत्ति और परंपरा को भी शामिल किया।

—जया जेटली

विश्वकर्माज़ चिल्ड्रन

भारतीय हस्तकला का उत्कृष्ट खज़ाना

वर्तमान और पूर्व में निर्मित किए गए विभिन्न सामग्री के शिल्प उत्पादों की तुलना एवं उनमें विभेद करना रुचिपूर्ण और निर्देशात्मक है। पूर्व काल के शिल्प के उत्कृष्ट शिल्प उदाहरण देखने के लिए आप उन संग्रहालयों में जा सकते हैं, जहाँ पर विशिष्ट शिल्प संग्रह हैं। संपूर्ण भारत में महलों में कल्पित राजसी कला संग्रह, अभिलेखागार और स्मारक हैं, जो कि आपको यह जानकारी देंगे कि भारत में शिल्प की परंपरा कई सदियों से प्रसिद्ध है।

पिछले 150 वर्षों में भारत में लगभग 700 से भी अधिक संग्रहालय विकसित हुए हैं। इनमें कुछ विशेष रूप से शिल्प संग्रहालय हैं। प्रत्येक संग्रहालय का केंद्र बिंदु भिन्न है – एक ही शिल्प, या एक ही व्यक्ति का निजी संग्रह अथवा सरकार द्वारा स्थापित इन विभिन्न प्रकार के संग्रहालयों और उनके संगठनात्मक मूल संरचना के उदाहरण इस पुस्तक में विस्तृत सूचना के साथ दृष्टांत सहित पाठ्यपुस्तक के परिशिष्ट में दिए गए हैं। ये संग्रहालय हैं – राष्ट्रीय हस्तशिल्प और हथकरघा संग्रहालय (शिल्प संग्रहालय), नयी दिल्ली; आशुतोष संग्रहालय, कोलकाता; कैलिको संग्रहालय, अहमदाबाद; बर्तन संग्रहालय, अहमदाबाद; सालार जंग संग्रहालय, हैदराबाद; राजा दिनकर केलकर संग्रहालय, पुणे और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय, भोपाल।

अभ्यास

1. अपने आसपास के क्षेत्र में रहने वाले शिल्पकारों द्वारा दैनिक जीवन में आने वाली समस्याओं को किस प्रकार नए तरीकों से सुलझाया गया – इसके उदाहरण खोजें और उसकी जाँच करें। जैसे – मटके में नल लगाना, चूड़ियों को सुंदरता से एक-दूसरे से जोड़कर लगाना, जिससे इन्हें अलग-अलग न पहनना पड़े इत्यादि। 'समस्या' और नए डिज़ाइन का उद्देश्य और उसमें नवाचारी प्रयोग का वर्णन करें।
2. अपने पड़ोस में रहने वाले शिल्पकारों से बातचीत कर एक लघु 'मौखिक इतिहास' लिखें कि किस प्रकार शिल्प का विकास हुआ। शिल्पवस्तुओं द्वारा समसामयिक आवश्यकताओं को किस प्रकार पूरा करने में वह समर्थ हुआ, इसका वर्णन करें।
3. अपने आसपास के क्षेत्र में यह पता लगाने की कोशिश करें कि क्या शिल्पकारों की कार्यशैली में हस्तकला एक मौसमी अंशकालिक क्रियाकलाप है। उनमें से कितने पूर्णकालिक, कितने अंशकालिक अथवा मौसमी शिल्पकार हैं? इसकी एक तालिका या पाई चार्ट बनाएँ।
4. अपने राज्य के शिल्पों की एक सूची बनाएँ, जिसमें यह बताएँ–
   - जो विशेष शिल्प समुदाय द्वारा बनाया जाता है;
   - जो कृषि समुदाय के लिए अतिरिक्त आय का माध्यम है;
   - जो केवल महिलाओं द्वारा बनाया जाता है;
   - जो केवल पुरुषों द्वारा बनाया जाता है।
   - जो केवल एक व्यक्ति द्वारा बनाया जाता है;
   - जो शिल्पियों के एक समूह द्वारा बनाया जाता है।
5. अपने विद्यालय में आप किस प्रकार एक संग्रहालय-कोना बनाएँगे, बताएँ।
6. आप क्यों सोचते हैं कि प्रत्येक राज्य में एक हस्तशिल्प संग्रहालय होना चाहिए और क्या ये संग्रहालय अखिल भारतीय दर्शन पर आधारित होने चाहिए अथवा केवल उन क्षेत्रीय शिल्पों पर, जो लुप्तप्राय हैं?